बोडपांडा पी. पूनाचा एवं अन्य

बनाम

के.एम. मडापा

(सिविल अपील संख्या 1959 सन् 2008)

13 मार्च, 2008

[एकल पीठ सिन्हा एवं वी.एस. सिरपुरकर, न्यायाधीश]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

आ.8, नि.6ए - प्रतिवादी द्वारा प्रतिदावा- दाखिल किया जाना, जब वाद हेतुक प्रतिवादी द्वारा प्रतिरक्षा प्रदत्त किये जाने के पश्चात उद्भूत हुआ हो- अनुमति दिया जाना - अभिधारित : अनुमति योग्य नहीं ।

आ.6, नि.17 - लिखित कथन का संशोधन - के लिए प्रार्थना - अभिधारित: अधिकार के रूप में अनुमति नहीं दी जा सकती- ऐसे मामलों में, न्यायालय के पास व्यापक विशेषाधिकर है - तथापि न्यायालय को विवेकाधिकारों का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए- प्रार्थना पत्र पर विचार करते समय न्याय की अधिनता ही अंतिम लक्ष्य है- अनुतोष प्रदान किया जाना प्रत्येक मामले में शामिल तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर करेगा।

सन् 1997 में कुछ निश्चित सम्पत्तियों के विरूद्ध वाद दायर किया गया। प्रत्यर्थी द्वारा लिखित कथन 21.03.1997 को यह तर्क देते हुए पेश किया कि कथित सम्पत्तियाँ उसके द्वारा खरीदी गई है। 04.01.2006 में इस आधार पर कि वादी द्वारा प्रत्यर्थी को

सन् 1998 में बेदखल कर दिया था, प्रतिदावा दाखिल किया गया। उक्त प्रतिदावे में यह कथन किया गया कि भूमि धारक सर्वेक्षण संख्या 61/01 सन् 1980 तथा 1986 में पारिवारिक सम्पत्तियों के विभाजन में उसके हिस्से में आई है तथा शेष भूमि उसके द्वारा सार्वजनिक नीलामी में खरीदी गई है। लिखित कथनों के संशोधन के प्रार्थना पत्र में वाद सम्पत्ती के कब्जे की वापसी हेतु प्रार्थना की गई। कथित प्रार्थना पत्र पर सिविल न्यायाधीश द्वारा अनुमति दी गई और उच्च न्यायालय द्वारा उसे सही ठहराया गया।

इस न्यायालय में अपील में, अपीलार्थी ने तर्क दिया है कि प्रतिदावा दायर करना जहां लिखित कथन पेश करने के बाद, वाद कारण उद्भूत हुआ हो आदेश 8 नियम 6ए सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत अस्वीकार्य है।

अपील स्वीकार करते हुए न्यायालय द्वारा अभिधारित किया गयाः-

1:1 आदेश 6 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन पर उदारतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। यह भी विवादित नहीं है कि लिखित कथनों में संशोधन, वाद में संशोधन से अधिक उदार विचार का हकदार है। आदेश 8 नियम 9 भी कानुनी शर्तों के रहते हुए प्रतिवादी को अतिरिक्त अभिवचन पेश करने योग्य बनाता है। [पैरा 9] [1016-बी, सी]

1:2 प्रतिदावा पेश करने का अधिकार एक अतिरिक्त अधिकार है। यह किसी भी अधिकार या दावे के संबंध में दायर किया जा सकता है, इसके लिए वाद हेतुक तथापि वाद दायर करने से पहले अथवा बाद में उद्भूत हो सकता है, किन्तु प्रतिवादी द्वारा अपना बचाव पेश करने से पूर्व उद्भूत होना चाहिए। प्रतिवादी ने अपने लिखित कथनों में संशोधन के प्रार्थना पत्र में स्पष्ट रूप से यह तर्क उठाया है कि अपीलार्थीगण द्वारा प्रश्नित भूमि पर अतिक्रमण सन् 1998 की गर्मियों में किया गया। प्रतिदावा पेश करने हेतु वाद कारण अन्य बातों के साथ उस समय उत्पन्न होना कहा गया है। यह प्रार्थना पत्र में

स्पष्ट रूप से कहा गया है। अतः उक्त प्रार्थना पत्र स्पष्ट रूप से पोषणीय नहीं है। एक विलम्बित प्रतिवाद को न्यायालय द्वारा हतोत्साहित किया जाना चाहिए।[पैरा 10, 11] [1016-डी, ई, एफ; 1017-ई]

महेंद्र कुमार बनाम मध्यप्रदेश राज्य (1987)3 एस.सी.सी. 265; शांति रानी दास बनाम देवांजी (श्रीमति) बनाम दिनेश चंद्र दे(मृत) विधिक वारिसान द्वारा [(1997) 8 एस.सी.सी. 174]; गुरूबचन सिंह बनाम भागसिंह एवं अन्य [(1996) 1 एस.सी.सी. 770; रमेश चंद बनाम अनिल पंजवानी (2003) 7 एस सी सी 350; पर भरोसा किया

बलदेव सिंह एवं अन्य बनाम मनोहर सिंह एवं अन्य (2006) 6 एस.सी.सी. 498 - संदर्भित

2:1 इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में प्रतिवादी को उसके लिखित कथन में संशोधन की अनुमति दी गई ताकि वह अपने बचाव का विस्तार कर सके तथा अपने मामले के समर्थन में अतिरिक्त अभिवचन ले सके। ऐसे मामलों में न्यायालय के पास व्यापक विवेकाधिकार है। तथापि यह न्यायपूर्ण होना चाहिए। यह सही है कि वाद बहुल्यता को रोका जाना चाहिए। यह भी सही है कि वाद में अनेक वाद कारणों का संयोजन स्वीकार्य है। [पैरा 12, 13] [1017-एफ, जी]

आंध्रप्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मेसर्स पायोनियर बिल्डर्स, ए.पी. (2006) 9 स्केल 520; स्टील औथोरिटी ऑफ इंडिया लि. बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य (2006) (9) स्केल 597; हिम्मत सिंह एवं अन्य बनाम आई.सी.आई. इंडिया लि. एवं अन्य, (2008) 2 स्केल 152 - पर भरोसा किया

2:2 न्यायालय को तथापि विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखते हुए कि न्याय की अधीनता ही अंतिम लक्ष्य है, वैधानिक

सीमा को पार नहीं किया जाना चाहिए। अनुतोष प्रत्येक मामले में शामिल तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है। न्यायालय को निःसंदेह गंभीर अन्याय एवं अपूर्णनीय क्षति को ध्यान में रखना चाहिए, किंतु फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि अभिवचनों में संशोधन अधिकार के रूप में सभी परिस्थितियों में प्रदान नहीं किया जा सकता। एक वाद हेतुक को दूसरे द्वारा पुनर्स्थापित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। सामान्यतः पहले के अभिवचनों में की गई स्वीकृति के प्रभाव को हटाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

[पैरा 13] [1018-ए, बी, सी]

लक्ष्मीदास दयाभाई कबरावाला बनाम नानाभाई चुन्नीलाल कबरावाला एवं अन्य ए.आई.आर. 1964 एस सी 11 - संदर्भित

सिविल अपीलिय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 1959/2008

कर्नाटक उच्च न्यायालय, बैंगलोर के अंतिम निर्णय एवं आदेश दिनांक 14.2.2007 डब्ल्यू ए संख्या 68 सन 2007 (जीएम सी पी सी)

ध्यान कृष्णन, निखिल नय्यर, गौतम नारायण, सम्राट सिंह, अंकित सिंघल और टीवीएस राघवेंद्र सायस अपीलार्थीगण की ओर से।

गिरीश अनंथमुर्ति, वैजयंथी गिरीश और पी.पी. सिंह प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधीश एस.पी. सिन्हा द्वारा दिया गया।

1. अनुमति दी गई।

2. यहां पर मुख्य प्रश्न यह है कि क्या प्रतिदावा को लिखित कथन प्रस्तुत होने के उपरांत पेश करने की अनुमति दी जा सकती है।

3. अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरूद्ध दावा वादग्रस्त संपत्ति के स्वामित्व व कब्जे बाबत पेश किया। उनके नाम राजस्व अभिलेख में मन्युटेशन दर्ज थे। प्रत्यर्थीगण ने अपीलार्थी के विरूद्ध मूल वाद संख्या 67 सन् 1996 पेश किया था। जिसमे अंतरिम निषेधाज्ञा का आदेश पारित किया गया था। उस एकपक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा की आड़ में उसने अपीलार्थी के कब्जे की संपत्ति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया।

4. मूल वाद संख्या 54 सन् 1997 न्यायालय सिविल न्यायाधीश सीनियर डिविजन में दिनांक 19.02.1997 को पेश किया गया। प्रत्यर्थी द्वारा लिखित कथन दिनांक 21.03.1997 को यह कहते हुए पेश किया गया कि उसने संपत्ति को सहकारी समितियों के सहायक पंजीयक, कोडगू द्वारा पारित एक आदेश के तहत खरीदा है।

5. वादी द्वारा दिनांक 04.01.2006 को प्रत्यर्थी को सन् 1998 में बेदखल करने के साथ अन्य आधारों पर प्रतिदावा पेश करने की अनुमति हेतु प्रार्थना पत्र पेश किया। उक्त प्रतिदावे में यह कथन किया गया कि भूमि जो धारक सर्वेक्षण संख्या 61/1 है, वह सन् 1980 तथा 1986 में पारिवारिक संपत्तियों के विभाजन में उसके हिस्से में आई है तथा शेष भूमि उसके द्वारा सार्वजनिक निलामी में खरीद की गई है। प्रतिदावा पेश करने हेतु वाद हेतुक 19.02.1997 में जब दावा प्रस्तुत किया गया तथा सन् 1998 में गर्मियों के अंत में जब वादी ने उसकी भूमि पर अतिक्रमण व कब्जा किया तब उत्पन्न हुआ। लिखित कथन में संशोधन के प्रार्थना पत्र में यह अनुतोष चाहा गया कि वादग्रस्त संपत्तियों के कब्जे दिलाए जाने का आदेश पारित किया जावे।

> "यह घोषणा करते हुए वादी के खिलाफ निर्णय एवं डिक्री पारित की जावे कि प्रतिवादी लिखित रूप में अनुसूची 'ए' संपत्तियों का संपूर्ण स्वामी है और वादी को अनुसूची 'बी' संपत्तियों को खाली करने और

प्रतिवादी को उनका एक निश्चित तिथि तक कब्जा दिलाए जाने तथा व्यतिक्रम की सूरत में न्यायालय से कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के तहत कब्जा दिलाए जाने का आदेश दिया जावे।"

उक्त आवेदन को विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 12.10.2006 के एक आदेश द्वारा अनुमति दी गई, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया कि प्रतिदावा पेश करने हेतु वाद कारण लिखित कथन पेश करने से पूर्व हुआ है।

अपीलार्थी द्वारा आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया गया।

6. विद्वान अपीलार्थी अधिवक्ता श्री ध्यान कृष्णन ने यह तर्क दिया कि लिखित कथन पेश करने के बाद वाद हेतुक उत्पन्न होने पर प्रतिवाद दायर करना सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 6ए के तहत अनुज्ञेय नहीं है।

7. विद्वान प्रत्यर्थी अधिवक्ता श्री गिरीश अनंथमूर्ति ने यह तर्क दिया कि अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचने के लिए विद्वान सिविल न्यायाधीश एवं उच्च न्यायालय द्वारा अभिधारण को कानूनन अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

8. आदेश 8 नियम 6ए सिविल प्रक्रिया संहिता में कहा गया है कि;

"6ए. (1) वाद में प्रतिवादी नियम 6 के अधीन मुजरा के अभिवचन के अपने अधिकार के अतिरिक्त वादी के दावे के विरूद्ध प्रतिदावे के रूप में किसी ऐसे अधिकार या दावे को जो वादी के विरूद्ध प्रतिवादी को, वाद दर्ज किए जाने के पूर्व या पश्चात् किंतु प्रतिवादी द्वारा अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के पूर्व या अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के लिए परिसीमित समय का अवसान हो जाने के पूर्व, किसी

वाद हेतुक के बारे में प्रोद्भूत हुआ हो, उठा सकेगा चाहे ऐसा प्रतिदावा नुकसानी के दावे के रूप में हो या नहीं।" (जोर दिया गया)

9. आदेश 6 नियम 17 सिविल प्रक्रिया संहिता में अभिवचनो के संशोधन का प्रावधान है। वहां जुड़े हुए परंतुक के रहते हुए (जो हस्तगत मामले में लागू नहीं होता है) ऐसे आवेदनों पर सामान्यतः उदारतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। यहां यह भी संदेहपूर्ण या विवादित नहीं है कि लिखित कथनों में संशोधन पर वाद में अभिवचनों के संशोधन की तुलना में अधिक उदारता से विचार किए जाने योग्य होते हैं। आदेश 8 नियम 9 भी कानूनी शर्तों के रहते हुए प्रतिवादी को अतिरिक्त अभिवचन दायर करने योग्य बनाता है।

10. उपरोक्त प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए आदेश 8 नियम 6ए के प्रावधान पर विचार किया जाना चाहिए। प्रतिदावा दायर करने का अधिकार एक अतिरिक्त अधिकार है। यह किसी भी अधिकार या दावे के संबंध में दायर किया जा सकता है। इसके लिए वाद हेतुक तथापि वाद दायर करने के पहले अथवा बाद में उद्भूत हो सकता है, किंतु प्रतिवादी द्वारा अपना बचाव पेश करने से पूर्व उद्भूत होना चाहिए। प्रतिवादी ने अपने लिखित कथनों के संशोधन के प्रार्थना पत्र में स्पष्ट रूप से यह तर्क उठाया है कि अपीलार्थीगण द्वारा प्रश्नित भूमि पर अतिक्रमण सन् 1998 की गर्मियों में किया गया। प्रतिदावा पेश करने हेतु वाद कारण अन्य बातों के साथ उस समय उत्पन्न होना कहा गया है। यह प्रार्थना पत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है। अतः उक्त प्रार्थना पत्र स्पष्ट रूप से पोषणीय नहीं है। *श्री रियाज अहमद* (ऊपर) का निर्णय *बलदेव सिंह व अन्य बनाम मनोहर सिंह व अन्य* [(2006) 6 एन.सी.सी. 498] के निर्णय पर आधारित है।

इसके अलावा हस्तगत मामले के तथ्य श्री रियाज अहमद (ऊपर) के मामले से भिन्न है। उस मामले में प्रतिवादी द्वारा प्रस्तावित संशोधन को दायर करने की अनुमति

दी गई थी, क्योंकि वह भूमि के विवादित हिस्से पर निर्मित क्षेत्र को हटवाने के लिए आज्ञापक निषेधाज्ञा की डिक्री हेतु प्रतिदावा पेश करना चाहता था। यहां यह अभिधारित किया गया कि प्रतिवादी बजाए एक अलग मुकदमा लेकर आए, यह अधिक उपयुक्त था कि उसके नकारात्मक घोषणा के अनुतोष को मद्देनजर रखते हुए उसे प्रतिदावा पेश करने की अनुमति दे दी जावे। जबकि हस्तगत मामले में प्रतिदावा दावे में विवादित भूमि के कब्जे की वापसी की डिक्री हेतु पेश किया गया था।

बलदेव सिंह (ऊपर) यह माने जाने का अधिकार नहीं देता है कि न्यायालय संशोधन के आवेदन को मंजूर करते हुए प्रतिवादी को प्रतिदावा पेश करने की अनुमति प्रदान करें, जबकि वह आदेश 8 नियम 6ए में निहित कानूनी शर्तों के विरूद्ध हो। इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में बिना किसी शर्त के इसे स्वीकार्य माना है।

देखें महेंद्र कुमार बनाम मध्यप्रदेश राज्य [(1987) 3 एस. सी. सी. 265], शांति रानीदास देवांजी (श्रीमति) बनाम दिनेश चंद दे (मृत) विधिक वारिसान द्वारा [(1997) 8 एस.सी.सी. 174]

11. गुरूबचन सिंह बनाम भागसिंह एवं अन्य [(1996) 1 एस.सी.सी. 770}] में इस न्यायालय द्वारा अभिधारित किया है।

> "..... परिसीमा यह थी कि प्रतिदावा या मुजरा (Set off) को लिखित कथन में बचाव के रूप में पेश करने से पूर्व या लिखित कथन पेश करने की मियाद निकलने से पूर्व निवेदित किया जाना चाहिए, चाहे ऐसे प्रतिदावा की प्रकृति नुकसानी के दावे के रूप में हो या ना हो।"

विलंबित प्रतिदावा को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

देखें रमेश चंद बनाम अनिल पंजवानी [(2003) 7 एस.सी.सी. 350]

12. हालांकि, हम इस न्यायालय के फैसलों से बेखबर नहीं है, जहां एक प्रतिवादी के लिखित कथन के संशोधन की अनुमति दी गई है ताकि वह अपने बचाव का विस्तार कर सके या अपने मामले के समर्थन हेतु अतिरिक्त अभिवचन ले सके।

13. ऐसे मामलों में न्यायालय के पास व्यापक विवेकाधिकार है। तथापि यह न्यायपूर्ण होना चाहिए। यह सही है कि वाद बाहुल्यता को रोका जाना चाहिए। यह भी सही है कि वाद में अनेक वाद कारणों का संयोजन स्वीकार्य है।

न्यायालय को तथापि विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखते हुए कि न्याय की अधीनता ही अंतिम लक्ष्य है, वैधानिक सीमा को पार नहीं किया जाना चाहिए। अनुतोष प्रत्येक मामले में शामिल तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है। न्यायालय को निःसंदेह गंभीर अन्याय एवं अपूर्णनीय क्षति को ध्यान में रखना चाहिए। किंतु फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि अभिवचनों में संशोधन अधिकार के रूप में सभी परिस्थितियों में प्रदान नहीं किया जा सकता। एक वाद हेतुक को दूसरे द्वारा पुनर्स्थापित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। सामान्यतः पहले के अभिवचनों में की गई स्वीकृति के प्रभाव को हटाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। *देखें आंध्रप्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मेसर्स पायोनियर बिल्डर्स, ए.पी. [(2006) 9 स्केल 520] और स्टील औथोरिटी ऑफ इंडिया लि. बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य [2006 (9) स्केल 597] और हिम्मत सिंह एवं अन्य बनाम आई.सी.आई. इंडिया लि. एवं अन्य, [2008 (2) स्केल 152]*

14. यहां बतलाए गए सभी कारणों के रहते हुए हमारा मत यह है कि विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा लिखित कथन में संशोधन के प्रार्थना पत्र को स्वीकार किया जाना सही नहीं था।

15. सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम 1976 के लागू होने से पूर्व भी न्यायालय प्रतिदावा को क्रॉस मुकदमे की भांति मानता था।

इस न्यायालय ने लक्ष्मीदास दयाभाई बनाम नानाभाई चुन्नीलाल एवं अन्य (ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 11) में अभिधारित किया है कि;

> "11. यह प्रश्न सैद्धांतिक रूप से विचार किए जाने योग्य है कि क्या कानून में कुछ भी ऐसा है संवैधानिक या अन्यथा, जो एक न्यायालय को प्रतिदावा को क्रॉस मुकदमे में दावा मानने से रोकता है। हमें कुछ भी ऐसा नहीं दिखता है। निःसंदेह, सिविल प्रक्रिया संहिता एक वाद की विषय वस्तु निर्धारित करती है, यह हो सकता है कि एक प्रतिदावा जिसे क्रॉस मुकदमा माना गया है, वह दावे की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता हो, किंतु यह अपने आप में न्यायालय को अभिवचनों को पढ़ने व उनका उचित तरीके से अर्थ निकालने के न्यायालय के क्षेत्राधिकार को वंचित नहीं करता है। उदाहरण के लिए जो क्रॉस मुकदमे में सही में दावा है, उसे लिखित कथन का हिस्सा बना दिया जाए, चाहे एक एनेक्सर बनाकर या एक भाग के रूप में जबकि उसे प्रतिदावा के रूप में वर्णित किया गया है, वहां न्यायालय के लिए कोई कानूनी आपत्ति नहीं होगी, जो उसे दावा मानते हुए प्रतिवादी को अनुतोष प्रदान करती, यदि वह दावे के रूप में लाई गई होती। श्री देसाई को यह स्वीकार करना पड़ा कि ऐसे मामले में न्यायालय को सही लिखित कथन को उससे जिसे प्रतिदावा वर्णित किया गया से अलग करने से और बाद वाले को क्रॉस मुकदमा मानने से नहीं रोका जा सकता। यदि इतना स्वीकार किया गया है तो यह मात्र इतना सा मामला है कि यदि प्रतिदावा में सभी आवश्यक बातें

शामिल हैं, जो एक दावे के रूप में माने जाने के लिए पर्याप्त आवश्यकताएं हैं, जो अनुतोष चाहने के लिए जरूरी है और यदि ऐसा है तो यहां यह माना जाना उचित है कि न्यायालय के लिए यह खुला हुआ होगा कि वह प्रतिदावा को क्रॉस मुकदमे का दावा माने। हमें केवल यह जोड़ने की आवश्यकता है कि यह सुझाव नहीं दिया गया है कि आदेश 8 नियम 6 अथवा संहिता के किसी अन्य प्रावधान में ऐसा कुछ भी है जो न्यायालय को इस तरीके को अपनाने में प्रतिबंध लगाता हो।"

16. हालांकि संसद द्वारा इस न्यायालय के निर्णय को प्रभावी बनाने में आदेश 8 नियम 6ए सिविल प्रक्रिया संहिता जोड़कर प्रतिबंध लगाया है। जहां कहीं वैधानिक प्रतिबंध मौजूद है, न्यायालय के क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

17. उपरोक्त कारणों से आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता, जो अपास्त किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है।

18. प्रतिवादी वाद या आवेदन अभिवचनों में संशोधन हेतु उस हद तक जो कानून द्वारा स्वीकार्य है, पेश करने हेतु स्वतंत्र रहेगा। प्रतिवादी अपील का खर्चा वहन करेगा। अधिवक्ता का शुल्क 10,000/- रूपए निर्धारित किया जाता है।

अपील स्वीकार की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी बीना गुप्ता (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।